

# आलोचना पाठ

(श्री जौहरीलालजी कृत)

(दोहा)

बंदों पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज ।  
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ॥१॥

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।  
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरण लही जिनराज ॥२॥  
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा ।  
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३॥  
समारंभ समारंभ आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ ।  
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥४॥  
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं ।  
तिनकी कहूँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥  
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के ।  
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥६॥  
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।  
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगाति मधि दोष उपायो ॥७॥  
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी ।  
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने ॥८॥  
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को ।  
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ॥९॥  
फल पंच उदुंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे ।  
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये विषयन दुखकारे ॥१०॥  
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये ।  
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।  
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥  
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग ।  
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥  
निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया ।  
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो ॥१४॥  
किये आहार बिहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।  
बिन देखी धरा उठायी, बिन शोधी वस्तु जु खायी ॥१५॥  
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो ।  
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है ॥१६॥  
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी ।  
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पड़ये ॥१७॥  
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी ।  
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ॥१८॥  
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई ।  
पुनि बिन गाल्यो जल ढेल्यो, पंखातैं पवन विलोल्ह्यो ॥१९॥  
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी ।  
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥  
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई ।  
ता मधि जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥  
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो ।  
झाड़ू ले जागा बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥  
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी ।  
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥  
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो ।  
नदियन विच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तामधि जु जीव निसराई ।  
 तिनको नहिं जतन करायो, गलियारैं धूप डरायो ॥२५॥  
 पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे ।  
 किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥२६॥  
 इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता ।  
 संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥२७॥  
 ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो ।  
 फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें कहि जावे ॥२८॥  
 तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी ।  
 हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥  
 जो गाँवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै ।  
 तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥  
 द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो ।  
 अंजन-से किये अकामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३१॥  
 मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो ।  
 सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥  
 इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ ।  
 रागादिक दोष हरीजै, परमात्म निज-पद दीजै ॥३३॥

(दोहा)

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय ।  
 सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय ॥३४॥  
 अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द ।  
 ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द ॥३५॥

निज स्वरूप को परम रस, जामैं भरो अपार ।  
 बन्दूँ परमानन्दमय, समयसार अविकार ॥